मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास
गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रथम संस्करण २२५०
मूल्य =)॥ ढाई आना



वृन्दावन-विहारी श्रीकृष्ण

GITA PRESS, GORAKHPUR

भेंट

श्रीराधारमणजी !

सरकार ! इसे ग्रहण कीजिये !

लालसा है दिलमें प्यारे मैं तुझे देखा करूँ ।
तू मुझे देखे-न-देखे मैं तुझे देखा करूँ ॥



श्रीहरिः

विषय-सूची



निवेदन



'मनन-माला' के पिरोनेवाले श्रीज्वालासिंहजी सरल-हृदयके एक भावुक पुरुष हैं। इस पुस्तकमें इन्हींकी भावतरङ्गोंकी कुछ झाँकियाँ हैं। झाँकियाँ सुन्दर हैं। 'ज्वाला'के सिवा अन्य सभी पद या दोहे संग्रहीत हैं परन्तु उन्हें अपने भावके अनुसार बना लेनेमें ज्वालासिंहजीने निरङ्कुशतासे काम लिया है। उनकी भावुकताके ख्यालसे पाठ शुद्ध न करके उन्हें ज्यों-का-त्यों छाप दिया गया है। यह उनका दोष नहीं है, भावुकता है। पाठकोंसे यही प्रार्थना है कि वे साहित्यकी दृष्टिको छोड़कर भावुक-हृदयसे ही इसे पढ़ें, तभी विशेष आनन्द मिलेगा।

विनीत—

प्रकाशक

श्रीराधारमणो जयति



मनन-माला

अभिलाषा

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मम उर बसौ, सदा बिहारीलाल॥

व्रज-जन-मन-हारी प्राणप्यारे बिहारीलालकी वह बाँकी झाँकी सदा इस हियमें बसी रहे, वह रूप-माधुरी नित्य नयनोंमें बसी रहे तो यह जीवन निहाल हो जाय। वही छटा, वही प्रभा, वही आभा मेरे रोम-रोममें रमी रहे। सदा उसी सलोने साँवरेकी सुधि आती रहे। बस, यही इस अकिञ्चनकी अनन्त कालकी अनन्य अभिलाषा है। प्यारेकी प्रत्येक वस्तुसे प्रेम हो,

जिस रूपको भी देखूँ, उसीमें अपने उस प्रियतमके दर्शन करूँ। अहा! मेरी यह दशा कब होगी--

नील कंज फूल देख आननकी याद आवे,
पूनौंके चन्द्रसे मुकुट दरसाय जात।
गुंजनसे गुंजमाल, बननसे बनमाल,
मोर-पंख पुंजनसे ख्याल सरसाय जात॥
'ग्वाल' कवि गैयनसे ग्वालनके गोलनसे,
बाँसनसे छरनिसे छबि वही छाय जात।
मठासे मथानीसे मथनेसे सु-माखनसे,
मोहनकी मेरे मन सुधि आय आय जात॥

अहा! मोहनकी सुधा-सनी सुधि आ तो जाती है, किन्तु आकर वह निगोड़ी जमकर रहती नहीं, फिर भाग जाती है। अगर वह सुधि सती-साध्वीकी तरह मेरे घरकी ही होकर रह जाय तो सब काम बन जायँ। देख मन! अब कभी वह सुधि आवे तो झटसे उसे पकड़कर हृदयमें छिपा ही लेना। खबरदार, फिर निकलने ही न पावे। प्यारे श्रीरावारमण बाधाहरणकी अनूप-रूप-माधुरीका नित-नयी उमंगसे निरन्तर पान करते ही रहना। उस लासानी चीजको पाकर फिर तुझे सांसारिक वस्तुओं-में भटकनेकी दरकार ही न रहेगी। देखना! खूब सावधानीके साथ चौकसी करना। अबकी बार भूल हुई तो फिर यह जिन्दगी

हाथ मलते-मलते ही वीतेगी। अहा! मेरे उस मनमोहन मतवारे माधवपर कोई क्या-क्या नहीं तज सकता—

घर तजौं बन तजौं 'नागर' नगर तजौं,
बंशीवट तट तजौं काहू पै न लजिहौं।
देह तजौं गेह तजौं नेह कहौ कैसे तजौं,
आज काज राज वीच ऐसे साज सजिहौं॥
बावरो भयो है लोक बावरी कहत मोको,
बावरी कहे ते मैं काहू ना बरजिहौं।
कहैया सुनैया तजौं बाप और भैया तजौं,
दैया तजौं मैया! पै कन्हैया नाहिं तजिहौं॥

ठीक ही तो है, भला, वह कमनीय कन्हैया कैसे तजा जाय! वास्तवमें वह प्यारी मूर्ति ही ऐसी है कि एक वार किसी वहाने चित्तमें वस जाय तो फिर कभी निकलती ही नहीं *'निकसत नाहिं वह कौने हू विधि रोम रोम उरझानी।'* फिर तो ज्यों-ज्यों भूलो, त्यों-ही-त्यों और भी अधिक उसकी याद आती जाती है। फिर तो वह प्रत्येक क्षण बाँसुरी बजाता और मन्द-मन्द मुसकुराता ही दीख पड़ता है।

हर हालमें बस पेशे नज़र है वही सूरत।
हमने कभी रूए शबे हिजरां नहीं देखा।

प्यारे मोहनकी मुसकुराहटकी अनोखी छबि कुछ-से-कुछ बना देती है—यह अलौकिक झाँकी सामान्य भाग्यवाले मनुष्योंको

थोड़े ही प्राप्त होती है ? अहा हा ! कैसा आनन्दाम्बुधिमें मग्न करनेवाला है उसके चिन्तनका प्रभाव—

दशन पाँति मुतियन लड़ी अधर ललाई पान ।
ताहू पै हँसि हेरिबो को लखि बचै सुजान ॥
मृदु मुसुकान निहारिके जियत बचत है कौन ।
नारायण कै तन तजै कै बौरा कै मौन ॥
औरै कछु बोलनि चलनि औरै कछु मुसुकानि ।
औरै कछु सुख देति हैं सकैं न बैन बखानि ॥
जाके मनमें बस रही मोहनकी मुसुकान ।
नारायण ताके हिये और न लागत ज्ञान ॥

प्रेम-मदिरामें छककर मतवाले बने हुएको होश तो रहता ही नहीं, फिर ज्ञान किसे सुहाये ? वह मतवाला तो हरदम प्रेम-सागरमें डूबा ही रहता है । स्तुति-निन्दा और सुख-दुःख सब उसे एक-से ही प्रतीत होते हैं । वह दीवाना बेचारा 'अगर-मगर लेकिन-परन्तु' क्या जाने ? वह बावला तो आठों पहर प्यारेके माधुर्य-मदमें ही मस्त रहता है—

ज़ाहिरमें गोके बैठा लोगोंके दरम्याँ हूँ—
पर यह खबर नहीं है मैं कौन हूँ कहाँ हूँ ।

बस, प्यारा सामने है और वह उसे देख रहा है—शेष संसारका कोई भान ही नहीं ! वह मुसुकानि ही ऐसी है कि जो सब कुछ भुला देती है—

श्याम-गौर वदनारविन्दपर जिसको वीर मचलते देखा,
नैन बान मुसुकान मन्दपर, कभी न नेक सँभलते देखा।
ललितकिसोरी जुगल इश्कमें बहुतोंका घर घलते देखा,
डूबा प्रेमसिन्धुका कोई हमने नहीं उछलते देखा॥

हे प्यारे जीवनधन! बस, इस प्रेम-समुद्रकी एक ही बूँद-का हमें हिस्सेदार बना दो, हम तो यह नहीं जानते थे कि तुम प्रेमसागर हो। आजतक कुछ-से-कुछ ही माने हुए थे। वैसे तो बहुत समयसे तुम्हें जानते थे, पर तुम्हारी इस महान् महिमाका पता नहीं था। अरे, अब तो ज्यों-ज्यों समझते हैं त्यों-त्यों मूक ही होते चले जाते हैं और अपनेको तुमसे तनिक भी पृथक् नहीं पाते हैं। बलिहारी! तुम्हें समझनेपर तो तुम कुछ विचित्र ही से प्रतीत होते हो—

मेरे दिलदार तुम हो, यार तुम हो, दिलरुबा तुम हो।
यह सब कुछ है मगर मैं कह नहीं सकता कि क्या तुम हो॥
तुम्हारे नामसे सब लोग मुझको जान जाते हैं।
मैं वह खोई हुई इक चीज़ हूँ जिसका पता तुम हो॥
मुहब्बतको तुम्हारी इक जमाना हो गया लेकिन।
न तुम समझे कि क्या मैं हूँ, न मैं समझा कि क्या तुम हो॥
न तुम तुम हो, न हम हम हैं, न हम हम हैं, न तुम तुम हो।
हमी हम हैं, तुम्हीं तुम हो फक़त या हम हैं या तुम हो॥

तुम्हें तो खूब देखा है बुतो अब उसको देखेंगे ।
खुदा ना जाने कैसा होगा जब शाने खुदा तुम हो ॥

अहाहा ! तुम्हारी प्रेम-सुधाका पान करके मन असीम आनन्दका अधिकारी होता जा रहा है और क्षण-क्षण उसमें उस माधुरी मूरति साँवरी सूरतिके दर्शनकी उत्कट अभिलाषा उत्पन्न होती जाती है। लोभीमें वह रुचि कहाँ ? प्रकृतिके गुलाम इस आनन्द-को कहाँ प्राप्त हो सकते हैं ? प्यारेकी याद धन्य है कि नख-शिखतक भुलाये नहीं भूलती। उसके सर्वाङ्गने मनको किस भाँति बाँध लिया है—

वह चितवनि वह सुन्दर कपोल द्युति,
वह दसननि छवि चिञ्जुकौ धरति है।
वह ओंठ लाली वह नासिका सकोरनिमें,
वह हावभावके यौं कौतुक करति है ॥
भनै 'मनीराम' छवि वरनि न सकै कोऊ,
छवि वह हेरि मुनि मनको हरति है।
वह मुसुकानि जुग-भौंहनि कमान द्युति,
वह बतरानि ना बिसारी बिसरति है ॥





दर्शन दो !

मेरे मनहरण मधुर मदनमोहन ! जीवनाधार प्यारे राधारमण !! तुम कहाँ हो, जो दीखते हुए भी नहीं दीखते ? निकट तो हो, परन्तु हाथ नहीं आते ! कहाँ खड़े मन्द-मन्द मुसकुराते हुए मन चुराते और हृदयपर साँप लहराते हो प्यारे ! अब तो आओ, अरे चितचोर ! शीघ्र आओ, मेरे सामने चले आओ, विलम्ब न करो ! भला, इतना क्यों सकुचाते हो ? तनिक विचारो तो सही, कहीं अपनोंसे मुँह छिपाया जाता है ? तुमने यह जादूभरा कैसा विचित्र ढंग सीख लिया है मेरे दिलदार ! कुछ समझमें ही नहीं आता !

बेहिजाब ऐसा कि हर ज़र्रेमें जल्वा[3] आशकार ।
तिस पै पर्दा यह कि सूरत आजतक देखी नहीं ।।

प्यारे ! यदि मुझसे रूठकर तुम्हें मुँह छिपाना ही है तो भला, सँभलके छिपो, यह क्या कि तुम मुझे न देखो और दीखते रहो—

खूब परदा है कि चिलमनसे लगे बैठे हो ।
साफ़ छुपते भी नहीं सामने आते भी नहीं ।।

ऐ मेरे अमूल्य माणिक ! देखो, मुझे छोड़कर तुम किसी योगीके हृदय-मन्दिरकी ओर न जाना । रोगी बन जाओगे वहाँ, उष्णताकी काल-कोठरीमें पवनतकको तरसोगे । यदि नहीं मानते, तो जाओ, पर याद रक्खो, तत्काल ही बाहर भाग आना पड़ेगा ! तुम्हारे सानन्द निवास और विहारके लिये मैंने परम रमणीक नवीन व्रज बसाया है । इस व्रजमें जहाँ मन चाहे विश्राम करो ! कुछ कालतक इस विचित्र भूमिका निरीक्षण तो कर लो प्यारे वंशीवारे !

मन मेरो वृन्दावन जामें कालीदह आदि,
वंशीवट सेवाकुंज अमित विश्राम हैं ।
मुख पुर मथुरा जहँ आवागमन नित्य रहे,
मस्तक पुर गोकुल जहाँ विहरत घनश्याम हैं ।।

१ परदा २ रेणु ३ प्रकाश ४ प्रकट ५ परदा

कंठ गोवरधन गिरिधारे गिरिधारी जहाँ,
नैन दास दोनों वरसाना नन्दगाम हैं—
ज्वाला व्रजभूमि यह शरीर देश नगर वसैं,
चाहे जहाँ रमौ जू तिहारे सब धाम हैं ॥

हे मनचातकके श्यामघन ! हे हृदयचकोरके पूर्ण चन्द्र ! हे दास-कंगालके अनन्तधन ! मैं बहुत देरसे तुम्हारी बाट देख रहा हूँ, अब तो शीघ्र ही प्रकट होकर अपनी दिव्य ज्योति तथा मुग्ध माधुरी मूरति साँवरी सूरतिकी चित्ततापहारी छटा दिखलाओ। मैं तो अब केवल तुम्हारे पादपद्मोंके ही दर्शनके लिये बैठा हूँ सरकार ! बहुत देर हो चुकी, अब मुझसे रहा नहीं जाता। बिना तुम्हें देखे मन किसी तरह नहीं मानता।

इक मिनटके लिये सरकार अब तो मिल जावे,
बहुत अरमान थे दिलमें वह सब निकल जाते।
जानबे दर्द यह रहीं आज तक तकती आँखें,
कान आहटपै लगे हैं कि इधरसे आते ॥
जैसी गुज़री है जुदाईमें हमारे सरपर,
बैठकर अपनी कहानी वह तुम्हें समझावे।
तेरे बीमारकी है मर्जे इश्कमें यह खूराक,
खूनेदिल पीते हैं औ लख्ते जिगर हैं खाते ॥

१ द्वार २ टूक

आओ शरमाओ नहीं हम भी हैं बेदाम गुलाम,
बहुत दिन हो गये दिलदार! अब तो तरसाते।
बे वजह बेरुखी क्यों इस कदर हमसे पाली,
क्यों भला रुक गये इस तरफ़को आते आते॥
क्या कहे राधारमन! हाल ज्वाला दिलका,
देखते आप तो सीनेसे चट लिपट जाते॥

भक्तवत्सल! तुम्हारा विरद है कि तुम जनके अवगुण-समुद्रको बूँद-सदृश सकुचा कर ही देखते हो और उसके तृणतुल्य गुणोंको पर्वत-सा मानते हो! परन्तु ऐसी नीति बनाकर कभी किसीके लिये इसका व्यवहार किया भी या नहीं?

१

नाथ तुम अपनी ओर निहारो।
हमरी ओर न देखहु प्यारे निज गुन-गननि विचारो॥
जो लखते अबलौं जन-औगुन अपने गुन बिसराई।
तौ तरते क्यों अजामेलसे पापी देहु बताई॥
अबलौं तौ कबहूँ नहिं देखे जनके अवगुन प्यारे!
तौ अब नाथ नई क्यों ठानत बैठे मोहि बिसारे॥
तुव गुन छमा दयासों मेरे अघ नहिं बड़े कन्हाई।
तासों तारि देहु नँदनन्दन हरीचन्दको धाई॥

१ प्रेमदीनता

सरकार ! मैं तुम्हारे लिये परम व्याकुल हूँ । आनन्दघन ! प्रेम-सुधा बरसाओ और तुरन्त रूपमाधुरीकी लावण्यता दिखलाओ । अब विलम्ब न करो ! कृपाकी भीख डाल दो झोलीमें और लुढ़कने दो इस शरणागतको अपने चारु चरणोंमें !

माधव अब न अधिक तरसैये ।
जैसी करत सदासे आये वही दया दरसैये ॥
मानि लेहु हम क्रूर कुढंगी कपटी कुटिल गँवार ।
कैसे असरन-सरन कहे तुम जनके तारनहार ॥
आरत तुम्हें पुकारत छिन-छिन सुनत न त्रिभुवनराई ।
अँगुरी डारि कानमें बैठे धरि ऐसी निठुराई ॥

नाथ ! अब तो तुम्हारा यह असह्य दारुण वियोग नहीं सहा जाता। विरहाग्निकी ज्वालासे देह दग्ध होता जाता है । इस जलन-को मिटानेवाली ओषधि तो तुम्हारे दर्शनोंमें ही है। बस, एक बार मृतक-जियावनि-दृष्टिसे मेरी ओर निहारो और इस प्रज्वलित विरहाग्निको बुझा दो ! नहीं तो वह समय शीघ्र आनेवाला है, जब कि यह प्राण-पखेरू उड़ जायँगे ।

थाकी गति अंगनुकी मति परि गई मन्द,
सूखि झाँझरी-सी ह्वैके देह लागी पियरान ।
बावरी-सी बुद्धि भई हँसी काहू छीनि लई,
सुखके समाज जित तित लागे दूर जान ॥

हरीचन्द रावरे बिरह जग दुःखमयो,
भयो कछु और होनहार लागे दिखरान।
नैन कुम्हिलान लागे, बैन हू अथान लागे,
आओ प्राणनाथ अब प्राण लागे मुरझान॥

मैं अपनी वियोग-वेदनाकी पीड़ा और किसे सुनाऊँ? शोक तो यह है कि हृदयमें दर्द आरम्भ हो रहा है और तुम्हारा भी निवास वहीं है--कहीं ऐसा न हो वह तुमतक पहुँच जाय और तुम भी उसका अनुभव करने लगो। तुम्हें व्यथा-पीड़ित देखकर मुझे बड़ी पीड़ा होगी, प्राणप्यारे! मेरी यह भविष्य-पीड़ाकी आशंका और कौन समझेगा? यह व्यथा-कथा तो केवल तुम्हीं सुन-समझ सकते हो। विषयानन्दी इसे क्या सुने-समझे?

मनकी कासों पीर सुनाऊँ।
बकनो वृथा और पति खोनी सबै चवाई गाऊँ।
कठिन दरद कोई नहिं हरिहैं धरिहैं उलटो नाऊँ॥
यह तो जो जानै सोइ जानै क्योंकर प्रकट जनाऊँ।
बिना सुजान-सिरोमणि री केहि हियरा काढ़ि दिखाऊँ॥
रोम रोम प्रति नैन स्रवन मन जेहि धुनि रूप लखाऊँ।
हरीचन्द पिय मिलें तो पगपरि गहि पटुका समुझाऊँ॥

मेरे राधारमण! प्यारे अब मिल जाओ! अधिक न तरसाओ,

आओ, आओ, आओ। इस जलते हुए हृदयसे चिपटकर इसे शीतल करो, मेरी दुर्दशापर तरस खाओ नाथ! अब मत विलम्ब करो।

प्यारे अब तो सही न जात ।
कहा करौं कछु बनि नहिं आवत निसिदिन जिय पछितात ॥
जैसे छोटे पिंजरामें कोउ परि पंछी तड़पात ।
त्यों ही प्रान परे यह मेरे छूटनको अकुलात ॥
कछु न उपाय चलत अति व्याकुल मुरि मुरि पछरा खात ।
हरीचन्द खींचो काहू विधि छाँड़ि पाँच अरु सात ॥

मैं किसे देखकर दिलको धीरज दूँ? सन्तोष और शान्तिका अवलम्ब कुछ भी तो नहीं दीखता श्यामसुन्दर! अब तो पधारो, शीघ्र पधारो! अरे निर्मोही, अब तो आ जाओ इन तरसीली आँखोंके सामने—

मुकटकी चटक लटक बिबिकुंडलकी,
भौंहकी मटक नेक आँखिनु दिखाइ जा ।
ऐहो बनवारी बलिहारी मैं तुम्हारी मेरी
गैल क्यों न आइ नेक गाइन चराइ जा ॥
'आदिल' सुजान रूप गुनके निधान कान्ह,
बंसीको बजाइ तन तपनि बुझाइ जा ।
नंदके किसोर चितचोर मोर-पंखवारे,
बंसीवारे साँवरे प्यारे इत आइ जा ॥

दु:खकी हद हो चुकी, अब मैं किसी भी परीक्षाके योग्य नहीं रह गया। यदि तुम्हें यही करना था, तो पहले ही मुझे क्यों ऐसे दिलवाला बनाया और क्यों स्वप्नमें मधुर-मधुर कोकिलकण्ठ सुनाकर मेरा चित्त चुराया, जो अब थाह बताकर नैराश्य-नदमें डुबो रहे हो।

दिलदार यार प्यारे दिलमें मेरे समा जा,
आँखें तरस रही हैं सूरति इन्हें दिखा जा।
चेरा हूँ तेरा प्यारे! इतना तो मत सता रे,
लाखों ही दुख सहा रे टुक अब तो रहम खा जा।
दिलको रहूँ मैं मारे कबतक बता, ऐ प्यारे!
सूखे बिरहमें तारे पानी इन्हें पिला जा।
तेरे लिये ऐ मोहन! छानी है खाक बन बन,
दुख झेले सर पै अनगिन अब तो गले लगा जा॥

प्राणाधार! तुम्हारे वियोगमें सारी रात दिनके सदृश ही व्यतीत हो जाती है—तारे गिनते-गिनते ही सवेरा हो जाता है। मेरी वेदनाकी कोई तिथि तो निश्चय कर दो!

तरसत श्रवन बिना सुने मीठे बैन तेरे,
क्यों न इन माहिं सुधा-बचन सुनाइ जा।
तेरे बिन मिले भई झाँझरी-सी देह मान
राख ले रे, मेरे धाइ कंठ लपटाइ जा॥

हरीचन्द बहुत भई अब न सही जात कान्ह,
हा ! हा ! निरमोही ! मेरे प्राननि बचाइ जा ।
कंठ लपटाय दया जीयमें बसाय ऐ रे,
ऐ रे ! निरदई ! नेक दरस दिखाइ जा ॥

प्यारे ! यह तो मैं भी भलीभाँति जानता हूँ कि बिना तुम्हारी पूर्ण कृपा तथा असीम दयाके तुम्हारा साक्षात्कार नहीं होता । कोटि भाँति जप, तीर्थ, दान, यज्ञ करो, अनेक भाँति घटपटकी खटपटमें जीवन गँवा दो, परन्तु शान्ति और सत्, चित्, आनन्दघनकी एक बूँद भी नहीं मिलती । जनके सन्ताप तो तभी दूर होते हैं जब तुम अपनी अमृतमयी 'मृतक-जियावनि' दृष्टिसे भोली-सी सूरत बनाकर अपने जनकी ओर इकटक हो निहारते हो । फिर तो सदाके लिये उसके दम्भ-दुःख-उलूक भाग ही जाते हैं और तुम मन्द-मन्द मुसकुराते वंशी बजाते दिखलायी देने लगते हो । परन्तु यह रहस्य तुम्हारी कृपाके अधीन है । बेचारे साधनमें यह सामर्थ्य कहाँ ?

यह तो गति है अटपटी झटपट लखै न कोइ ।
जो मनकी खटपट मिटे तो चटपट दर्शन होइ ॥

तब लग या मन-सदनमें हरि आवैं किहि बाट ।
निपट विकट जबलौं जुटे खुलें न कपट-कपाट ॥



प्रियतम प्रभुका शुभागमन

अहाहा ! प्यारे प्राणनाथ कृपालुने इस दीनपर दयाकी दृष्टि कर ही दी। धन्य है राधारमण तुम्हारे विरदको। क्या ही अलौकिक बाँकी झाँकी है। मुग्ध मनहरण रूप-माधुरीका क्या ही अवर्णनीय आनन्द है। आँखोंके सामने आते ही आनन्दसे विह्वल हो समस्त चञ्चल इन्द्रियाँ विमूढ़-सी हो गयीं। वाह रे मोहन ! मस्तानी चालसे मत्त गयन्द-गति लजाते, मनहरण मुरली बजाते, मन्द-मन्द मुसकराते, पीताम्बर फहराते, पग-नूपुर झमकाते, मोर-मुकुट चमकाते, और छवि श्यामघन चुराते हुए कैसी अलबेली छटा दरसाने लगे। आहा ! वाणी इस छविका कैसे

वर्णन करे ! धन्य भाग्य, धन्य भाग्य ! प्राणाधार प्यारे, तुम्हारे चरणोंमें इस तुम्हारे जनके असंख्य प्रणाम हैं—

लटकि लटकि मनमोहन आवनि ॥
झूमि झूमि पग धरनि भूमिपै गति मातंग लजावनि ।
गोखुर रेनु अंग अँग मंडित उपमा दग सकुचावनि ॥
नव घनपर जनु झीनि बदरिया सोभा-रस बरसावनि ।
विगसनि मुखलौं कानि दामिनी दसनावलि दमकावनि ॥
बीच बीच घनघोर माधुरी मधुरी बेनु बजावनि ।
मुक्तमाल उर लसी छबीली मनु बगपाँति सुहावनि ॥
बिन्दु गुलाल गुपाल कपोलन इन्द्रवधू छवि छावनि ।
रुनुन झुनुन नूपुर धुनि मानो हंसनुकी चुहचावनि ॥
जँघिया लसत कनक कछनीपर पटुका ऐंचि बँधावनि ।
पीताम्बर फहरानि मुकुट छवि नटवर बेष बनावनि ॥
हलनि बुलाक अधर तिरछौंहें बीरी सुरँग रचावनि ।
ललितकिसोरी फूल झरनि या मधुर मधुर मुसुकावनि ॥

वाह रे मनहरण श्रृंगार ! तेरा जीवन भी आज प्यारेके शरीर-ललाम शोभामिरामपर सज्जित होनेसे सार्थक हो गया ! धन्य वनमाल तेरे भाग्य, जो तू प्यारेके वक्षःस्थलपर विराजमान है । प्रियतम ! तुमने बड़ी ही कृपा की, जो इस नाचीज़को अपूर्व देवदुर्लभ दर्शन-दान दिया, जिसके आनन्दमें डूबकर मन-मधुप चरण-

कमलके मधुर मकरन्दका साग्रह पान कर रहा है और नयनाभिराम घनश्याम ! तुम्हारी अपार छबि-सुधा-निधिकी उत्ताल तरंगोंमें बह रहा है । मन क्या-क्या देखे ? जहाँ जाता है वहीं रम जाता है । क्या ही सर्वांगकी शोभा है ? इस मनोरम छबिपर तो बस *'अंग-अंगपर वारिये कोटि कोटि शत काम'* यही कहते बनता है ।

माथेपर मुकुट देखि चन्द्रिका चटक देखि,
छबिकी छटक देखि रूप रस पीजिये ।
लोचन विसाल देखि गले गुंजमाल देखि,
अधर रसाल देखि चित्त चुप्प कीजिये ॥
कुंडल हलनि देखि पलक चलनि देखि,
अलक चलनि देखि सरबस दीजिये ।
पीताम्बर छोर देखि मुरलीकी घोर देखि
साँवरेकी ओर देखि देखिबोई कीजिये ॥

शरीर ! आजसे मैं तुझे मल-मूत्रका पिण्ड कहकर तेरी निन्दा नहीं करूँगा क्योंकि तुझमें विराजमान जीव आज मेरे जीवनप्राण श्रीराधारमणजीका मुखड़ा अवलोकन कर धन्य हो रहा है, श्रीसाँवरे छोटेलालजीके मस्त मस्ताने हाव-भाव कटाक्षका रसास्वादन कर रहा है और कन्हैया प्यारे केशवदेवके स्वरूपको देख-देखकर, हरिगोविन्द पुकारकर अपनी वियोग-ज्वालाको

झुला रहा है। नेत्रो ! तुम क्या देखते हो ! इस मनभावन विचित्र छटाको अवलोकन करके सदाके लिये गहरी पूँजी इकट्ठी कर लो। ऐसा समय बार-बार नहीं मिलेगा। योगियोंको यह बाँकी झाँकी अनेक साधनोंद्वारा भी प्राप्त नहीं होती। शिव-ब्रह्मादि भी इसे खोजते फिरते हैं। देख लो, फिर देख लो, अबकी चूके पार नहीं मिलेगा—

मोहन बसि गयो इन नैननमें।
लोकलाज कुलकानि छूटि गई याकी नेह लगनमें॥
जित देखौं तित ही वह दीखै घर बाहर आँगनमें।
अंग अंग प्रति रोम रोममें छाय रह्यो तन मनमें॥
कुंडल झलक कपोलन सोहै बाजूबन्द भुजनमें।
कंकन कलित ललित बनमाला नूपुर धुनि चरननमें॥
चपल नैन भ्रकुटी वर बाँकी ठाढ़ो सघन लतनमें।
'नारायन' बिनु मोल बिकी हौं याकी नेक हँसनमें॥

नवलकिशोर चितचोर! आज यह चरणसेवक कृतार्थ हो गया। बड़ी ही कृपा की,जो इसे आज सौभाग्यपद दिया। प्रेमकी आकर्षण-शक्तिको बारम्बार धन्य है जो कि सरकारको कच्चे धागेमें ही बाँध लायी।

दिल साँचो लगो जेहिको जेहिसों तेहिको तेहि ठौर पठावतु है।
चलि हंस चुगे मुक्ताहलको अरु चातक स्वातिको पावतु है॥

कवि ठाकुर यामे न भेद कछू उरझावतको सुरझावतु है।
परमेसुरकी परतीति यही मिलो चाहत ताहि मिलावतु है॥

प्यारे! तुम तो सदासे ही सच्ची लगनसे आकर्षित होकर प्रकट होते आये हो। भक्तके प्रेमपाशमें बँधकर खिंच ही जाते हो। कई बार तो भक्तोंकी पुकार सुनकर तुम्हें अपना वाहन त्याग नंगे ही पाँव दौड़ना पड़ा है। ओ भावके भूखे भगवान्! तुम्हें साष्टांग प्रणाम है। किसीने सत्य कहा है—

कमल कब गये हे भ्रमरनु बुलाइवेको,
रूखन पखेरू पर बेशतु मँडरात हैं।
चन्द्रमाकी चीठी कब गई ही चकोरनुपै,
घनके गरजिवेते दादुर चिल्लात हैं॥
मानसर गयो हो चलिकौन दिन हंसनु पास,
दीपक पतंग ज्योति चाहत अकुलात हैं।
ऐसे ही साधु कवि पंडित महानुभाव,
जहाँ जहाँ भाव देखें तहीं चले जात हैं॥

राधारमण! ऐसे प्रेम-भावको निभाना तुम्हारा ही प्रभाव है। दया तो तुम्हारा स्वभाव है। आर्तजनके टूटे-फूटे शब्द मुखसे सुनते ही तुम दिव्य धाममें तड़पने लगते हो—और तत्काल ही दौड़े चले आते हो। द्रौपदी, ध्रुव, गजेन्द्र, गीध इत्यादिके प्रसंगमें

तुमने ऐसा ही प्रत्यक्ष दिखलाया है। प्रह्लादसे तो तुम गिड़गिड़ाकर अपना अपराध क्षमा कराने लगे थे कि 'पुत्र! यदि मेरे आनेमें देर हुई हो और तबतक तुझको कष्ट पहुँचा हो, यह मेरा अपराध क्षमा कर बेटा प्रह्लाद! तेरी शोकार्त वाणीको सुनते ही मैं मतवाला हो गया। जल्दीमें शरीर बनाना भी तो भूल गया, आधा मनुष्य और आधा पशु बन गया, मुझे तो शरणागत प्यारा है—भक्तको कभी मैं भूलता नहीं। प्रत्येक क्षण अपने स्मरण करनेवालेको रटता रहता हूँ। मैं सदा भक्त-प्रसन्नतामें ही प्रसन्न हूँ'—

मैं नित भक्तन हाथ बिकाऊँ।
आठौं याम हृदयमें राखूँ पलक नहीं बिसराऊँ॥
भक्तनकी जैसी रुचि देखौं तैसोइ वेश बनाऊँ।
टारौं अपने वचन भक्त लगि तिनके वचन निभाऊँ॥
ऊँच नीच सब काज भक्तके निजकर सकल बनाऊँ।
रथ हाँकौं पग धोऊँ बासन भाजौं छानि छवाऊँ॥
माँगौं नाहिं दाम कछु तिन्हतें नहिं कछु तिनहि सताऊँ।
प्रेमसहित जल पत्र पुष्प फल जोइ देवै सोइ पाऊँ॥
निज सरबस्व भक्तको सौंपौं अपनो सत्व भुलाऊँ।
भक्त कहै सोइ करौं निरन्तर बेंचै तो बिक जाऊँ॥





प्रार्थना

मदनमोहन ! मैं भक्तका तो पड़ोसी भी नहीं हूँ, परन्तु मेरे और भी तो बहुत-से नाते तुमसे हैं, किसी-न-किसी सम्बन्धसे तो तुम मुझपर अवश्य अनुग्रह करके ही रहोगे । मैंने तो मकड़ीके जालेकी नाईं नातोंका जाल ही बिछा रक्खा है । भला, मेरे इन सम्बन्धोंसे बचकर तुम कहाँ जा सकते हो ! एक न मानोगे तो दूसरे, तीसरेको तो मानना ही पड़ेगा ।

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी,
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप-पुंजहारी ।
नाथ तू अनाथको अनाथ कौन मो सो,
मो समान आरत नहिं आरतिहर तो सो ॥

ब्रह्म तू हौं जीव हौं, तू ठाकुर हौं चेरो,
तात मात गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो।
मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै,
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरण-शरण पावै॥

हे कुञ्जबिहारी! इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी मैं मूर्ख अभीतक तुम्हें भूला हुआ हूँ, इसका कारण तो मुझे यही ज्ञात होता है कि तुमने अपने अनन्त उपकारोंसे मुझे कुछ ऐसा पूर्ण विश्वास-सा दिला दिया कि जिससे मैं बिल्कुल आलसी ही बन गया और अपने कर्तव्य-कर्मको भी भूल बैठा। यहाँतक कि, मुझसे अब कुछ याद करते ही नहीं बनता और न किसी कर्ममें ही निष्ठा-प्रवृत्ति होती है। करूँ भी तो क्यों करूँ? मैं भली भाँति जानता हूँ कि नन्दनन्दन मेरी लाज तो जाने ही नहीं देंगे। यह भी जानता हूँ कि लाज जानेपर मेरी हँसी नहीं होगी, संसार राधारमणको ही हँसेगा। बस, इसी विश्वासपर सब कार्य धड़ाधड़ चलते जा रहे हैं। कर्म, ज्ञान, उपासना, योगके झंझटमें कौन पड़े? औरोंसे आगे न सही, तो पीछे ही सही। मुझपर कृपा तो अवश्यमेव होगी, फिर होगी, फिर होगी '*अब तो निभायाँ सरेगी बाँह गहेकी लाज*', अपना तो सौदा बेदाम बनेगा। अमूल्य मणि बिना ही मूल्य प्राप्त होगी, होगी, निःसन्देह होगी।

मैं तो हौं पतित, आप पावन-पतित नाथ!
पावन-पतित हौ तो पावक हरोईगे।

मैं तो महादीन आप दीनवन्धु दीनानाथ,
दीनवन्धु हो तो दया जीयमें धरोईगे ॥
मैं तो गरीब आप तारक गरीबनके
तारक-गरीब हो तो विरद बरोईगे ।
मेरी करनी पै कछु शुकर ना कीजै कान्ह,
करुनानिधान हो तो करुना करोईगे ॥

दीनदयालो ! तुम तो आज काकतालीय-न्यायकी तरह अनेकानेक जन्मके बिछुड़े हुए मिल गये हो, तुम्हारी भेंट अब मैं कंगाल क्या चढ़ाऊँ ? एक मन-मणि थी वह तो तुम्हें प्रथम ही नामांक-मालामें वेधकर पहिना चुका जो तुम्हारे हृदयपर विराजमान है। रहा शरीर और उसकी सम्बन्धी वस्तुएँ, वे सब तुम्हारी ही दी हुई हैं। जिन्हें देते मुझे लज्जा-सी प्रतीत होती है। हाँ, तुम्हारा वेदामका गुलाम बनकर जीवन गँवानेकी आज्ञा माँगता हूँ। यदि मुझे सरकारकी इतनी नौकरी मिल जाय तो मैं निहाल हो जाऊँ।

मेरे तो जीवन परियंत यह प्रतिज्ञा ग्वाल,
त्यागि या स्वरूपहिं अब और ना निहारौंगो।
करनीवस जौन वेश जौन देश जाय बसौं,
तहाँ दिन रैन राधारमण ही पुकारौंगो ॥
भूलिके न हेरौं धन धाम काम वाम ग्राम,
और अब विचार नाहिं चित्तमें विचारौंगो।

प्यारेकी माधुरी मनोहर मुसुकान हेरि,
जीवन धन तन मन हौं वार वार वारोंगो ॥

अब तो जिस विधि रक्खोगे, उसी विधि रहूँगा। दीन-दयालो! मैं सेवक हूँ। स्वामीकी आज्ञा पालन करना मेरा धर्म है। प्राणनाथ! अब तो तुम्हारे ही अधीन हूँ, तुम्हारी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न हूँ।

सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारे हम,
राखिहौ हमैं तो शोभा रावरी बढ़ाइहैं।
तजिहौ हरपि कर विलग न सोचैं कछु,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो यश गाइहैं ॥
सुरनु चढ़ैंगे नर शिरनु चढ़ैंगे पर,
सुकवि अनीस हाथ हाथमें विकाइहैं।
देशमें रहैंगे परदेशमें रहैंगे काहू
वेषमें रहैंगे तहाँ रावरे कहाइहैं ॥

प्यारे! अब कृपा करके इस सेवककी इस कुटिल हृदय-कुटियाका तो निरीक्षण कर लो, देखो, तुम्हारे ही जैसी कैसी वक्र और तिरछी कुटिया तुम्हारे लिये बनायी है इस गुलामने! क्योंकि—

दुखी होहुगे सरल चित बसत त्रिभंगीलाल।

और नाथ! इस मेरे मनभवनमें सदैवसे ही घोर अन्धकार भरा

है, यदि तुम गोपबालोंसे भागकर आये हो तो सीधे ही चले आओ इस काजलकी कोठरीमें, यहाँ हाथ मारा भी नहीं दीखता है। बरसों पड़े रहना, किसीको पता भी नहीं चलेगा, यहाँतक कि मैं स्वयं भी नहीं देख सकूँगा। यदि अन्धकारमें मनको विक्षेप हो तो यह भली भाँति जान रक्खो, तुम्हारे आते ही प्रकाश भी हो जायगा, क्योंकि सूर्य-चन्द्र तुम्हारे नेत्र हैं और यह समस्त विश्व तुम्हींसे प्रकाशित हो रहा है। तुम्हारी अद्भुत छटाके दीपक ही प्रत्येक अन्तःकरणमें देदीप्यमान हो रहे हैं। प्यारे प्राणाधार! आज इस अनाथके अन्धेरे घरमें भी उजियाला कर इसे भी चमका दो प्रभो!

या अनुरागी चित्तकी गति समुझे नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूडे स्यामरँग त्यों त्यों उज्ज्वल होय॥

माधुरे मोहन! अब देर क्यों कर रक्खी है? प्यारे! मेरे तो जो कुछ भी हो तुम्हीं हो, कृपा करो और इस मन-भवनमें निवास करो। बहुत नहीं तो सुबह-शाम एक-एक घण्टेको तो विश्राम कर ही लिया करो।

शुभ शान्तिनिकेतन प्रेमनिधे मन-मन्दिरके उजियारे हो।
इस जीवनके तुम जीवन हो इन प्राणनके तुम प्यारे हो॥
पितु मातु सहायक स्वामि सखा तुम ही इक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और अधार नहीं तिनके तुम ही रखवारे हो॥

प्राणप्यारे ! मुझे अपना ऐसा गाढ़ा प्रेम दो कि मैं तुम्हें रात-दिन देख-देखकर पागल होकर रोया करूँ और अपने इस सत्य स्नेहीको दारुण वियोगकी अग्निमें भी कभी-कभी जलाया करो, जिससे कि यह सच्चा मस्ताना आशिक (वैष्णव) बन जाय। विरहाग्निमें अपने चित्तको भून डाले और रक्तकी प्रेम-मय मदिरा बनाकर मस्त हो जाय। सब साधनोंका फल, बस विरहाग्निसे ही प्राप्त हो जाय।

काम कुरंग औ क्रोध कबूतर ज्ञानके बानसों मारि गिराये।
नेहको नोन लगाय भली विधि सत्यकी सींकमें आनि पुवाये॥
पंचक मारि करे कोइला फिर योगकी आँचसों आनि तपाये।
या विधि लाइ बनाइके खाइ तो वैष्णव होत कबाबके खाये॥

क्योंकि नाथ ! वियोग और विक्षेप भी तो तुम्हारी महान् कृपासे ही प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार वर्षा-वसन्तके अतिरिक्त वृक्षकी जड़ और महीनोंमें बढ़ती है; चाहे जितना जल डालो, वृक्ष नहीं बढ़ता। इसी प्रकार विक्षेप और वियोगमें प्रेम-वृक्षकी जड़ गहरी गड़ती जाती है और उत्सुकताके पत्ते निकलने लगते हैं—

हम तेरे इश्कमें श्याम बहुत दिन भटके।
अब हमें मिला तू सनम खुले पट घटके॥

किये रंजो अलम मंजूर ज़रा नहिं भटके।
सब दहशत दिलकी निकल गई छँट-छँटके॥
कर लाख बलाके सनम दिये तूने झटके।
पर गिरे न हरगिज़ कदम पकड़ हट-हटके॥
कई-बार गया सर तेरे इश्कमें कटके।
फिर पाया हमने नाम तुम्हारा रटके॥
जब नाम बनाकर फाँद जानकर लटके।
तब मिला हमें तू सनम खुले पट घटके॥

नाथ! मैं यह कभी नहीं कहता कि तुम मुझे मानुषिक सद्भाव प्रदान करो। शिष्टाचार और सभ्यताका पात्र तो तुम अपने किसी और सेवकको तो बनाना। मैं मूर्ख ही अच्छा हूँ।

बना दो बुद्धिहीन भगवान॥
तर्क-शक्ति सारी ही हर लो हरो ज्ञान-विज्ञान।
हरो सभ्यता-शिक्षा-संस्कृति नव्य जगतकी शान॥
विद्या-धन-मद हरो, हरो हे हरे! सभी अभिमान।
नीति-भीतिसे पिंड छुड़ाकर करो सरलता दान॥
नहीं चाहिये भोग योग कछु नहीं मान-सम्मान।
ग्राम्य-गँवार बना दो, तृण सम दीन निपट निर्मान॥
भर दो हृदय भक्ति-श्रद्धासे करो प्रेमका दान।
प्रेमार्णव! निज मध्य डुबोकर मेटो नाम-निशान॥

मेरी तो हार्दिक इच्छा है कि मुझे तो उन पशु-पक्षियोंके सदृश प्रेमके भावोंसे भरा भावुक बनाओ, जिससे कि मैं तुम्हें त्याग ही न जानूँ और तुम्हींसे असीम प्रेम मानूँ। अहाहा! पशु-पक्षियोंके भावोंको धन्य है। प्राण चाहे जाय परन्तु प्रियतमका वियोग न हो—

सर सूखे पंछी उड़ैं औरन सरन समाहिं।
दीन मीन बिनु नीरके कहु रहीम कहँ जाहिं॥
मीन वियोग न सहि सकै नीर न पूछै बात।
तू ताकी गति देखि ले रति न घटे दिनरात॥
मीन मारि जल धोइये, खाये अधिक पियास।
बलिहारी वा चित्तकी मुयेहु मीतकी आस॥
फूटे नैन परागसों कंटक कटो शरीर।
तहूँ मधुपने ना तजी निज गुंजार गँभीर॥
काठ काटिके घर करै लखौ नेहकी बात।
प्रेम-गंधमें अंध ह्वै मधुप कंज बँधि जात॥
चातक घन तजि दूसरहि जियत न नाई नारि।
मरत न माँगो अर्धजल सुरसरिहूको वारि॥
दीपक पीर न जानई पावक बरत पतंग।
मन तो तेहि ज्वाला जरो चित न भयो रस भंग॥

प्यासो रहति समुद्रमें मुखको राखति बूँद।
हियो फारि सुखमें भरति सीप स्वातिकी बूँद॥
इत-उत चित चितवत नहीं भरे नदी नद ताल।
मानसरोवरसों पगो जीवन-मरन मराल॥
पशुकी जाति कुरंगते प्रीति नादसों जोरि।
प्रनपर डारो वारिके तन तिनुका सो तोरि॥
देखो करनी कमलकी कीनो जलसों हेत।
प्रान तजो प्रेम न तजो सूखो सरहि समेत॥
लगी लगन छूटै नहीं जीभ चोंच जरि जाइ।
मीठो कहा अंगारमें जाहि चकोर चबाइ॥
चिनगी चुगत चकोर यों भस्म होय यह अंग।
लावें शिव निज भालपर मिलै पीय ससि-संग॥

सुजानशिरोमणि श्यामसुन्दर! हे महादानी श्रीराधारमण! बस, मेरी भी अब यही हार्दिक आकांक्षा है कि मुझे भी शीघ्र उस मिट्टीमें मिल जाना चाहिये, जिस मेरी मिट्टीके कुम्हार पात्र बनावें, गोपबालाएँ उसमें दही जमावें और उस दधिको पात्रसहित तुम मुहँसे लगाये खाते भागते जाओ और मैं मिट्टीका पात्र बना तुम्हारे ललाम होठोंका मधुर मधुरामृत पान करता रहूँ। नाथ! मैं भी कृतार्थ हो जाऊँ—

पसेमुर्दन[1] बनाये जाँयेंगे सागरं[2] मेरी गिलेके[3]।
लँबे[4] जानाँके[5] बोसे[6] खूब लेंगे खाकमें मिलके॥

प्यारे मुरलीमनोहर! मुझमें प्रेमका तो अंशांश भी नहीं, यह हृदय तो अवगुणोंका अगाध आगार है—दुष्कृत्योंका दरिया भरा है इसमें। परन्तु अब आजसे मुझे उसका ज़रा-सा भी भय नहीं। क्योंकि सरकार! तुम अपने श्रीमुखसे स्वयं कह चुके हो—

सन्मुख होत जीव मोहि जबहीं।
कोटि जन्म अघ नासों तबहीं॥

मेरे सच्चे सरकार! तुम्हारी प्रेमनीति एक-से-एक बढ़कर दीनोंके पालनमें पूर्ण पटु है फिर अपनी ओर निहार कर मुझपर अगाध प्रेम क्यों नहीं करोगे!

औगुन जो गनिहौ प्रभु मोर नहीं गनि पैहौ गयन्दउधारी।
है गुन एकहु ना गरुओ जिहिसे परसन्नता होय तिहारी॥
पय रस एकहि पारस गंग बड़े अपनावत दोष बिसारी।
राखहु या रघुराजकी लाज दयानिधि आपनि ओर निहारी॥

नाथ! अब इस अपने अबोध चाकरके असीम अपराधोंको क्षमा करो और दयाका दान दो। तुम समर्थ और न्यायी हो, मेरी धृष्टतापर ध्यान न दो दयामय!

१ मरनेके पश्चात् २ प्याले ३ मिट्टी ४ होठ ५ प्यारे ६ चुंबन

हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो सोइ लखि पार करो॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलो नीर भरो।
दोनों मिलि जब एक धार भइ सुरसरि नाम परो॥
इक लोहा पूजामें राखत इक घर बधिक परो।
सो दुविधा पारस नहिं मानत कंचन करत खरो॥
इक माया इक जीव कहावत सूरश्याम झगरो।
अब याको निर्वाह करौ प्रभु नहिं प्रन जात टरो॥

श्यामसुन्दर! वास्तवमें तो मुझमें कोई ज्ञान ही नहीं, मैं तो सामान्य पठित-मूर्ख हूँ। परन्तु मुझे अपनी यह अभिमानभरी थोड़ी-सी जानकारी ही महान् कष्ट दे रही है। तुम्हारे ध्यानमें अनेकों 'अगरमगर परन्तु किन्तु'की शङ्का उठाती रहती है। प्यारे! अब तो मुझे अपना ही मस्ताना दीवाना बना लो और जो कुछ जानता हूँ, वह कृपा करके भुला दो। तुम्हारे सिवा और कुछ ज्ञात ही न रहे।

आजलौं जो देखो सुनो पढ़ो गुनो जीवनभरि
मेरे घनश्याम मेरे चित्तसों भुलाइदै।
तेरे अवलोकनमें शङ्का जो न उठै फेरि
ऐसो महाघोर मोहि मरख बनाइदै॥

विसरि जाँइ राग साज धुनि स्वर ताल सम
जो पै मन-मन्दिरमें बाँसुरी बजाइदै।
छको फिरौं रूपरस माधुरीको पानकैके
प्रेमी मतवाला तू ज्वालाको बनाइदै॥

मुझे अब सांसारिक सुखकी नाममात्र इच्छा नहीं, मैं तो अपने मानव-जीवनकी सच्ची कसौटी दुःख ही तुमसे माँगता हूँ, क्योंकि दुःख ही मनुष्यको सुमार्गकी सीढ़ीपर चढ़ाता है, इसलिये नाथ! मुझे दुःखकी अमूल्य मणि दो जिससे कि मैं रात-दिन सानन्द तुम्हारा कीर्तन करता रहूँ, मुझे वह दर्द दो कि जिसकी कसक कभी बन्द ही न हो, ऐसा काँटा लगाओ कि जो हरदम ही खटकता रहे और मैं श्वास-श्वासपर आपको टेलीफोन करता रहूँ। घोर दुःख भी तो तुम्हारी महान् दयासे ही प्राप्त होता है। वास्तवमें सत्य विश्वासकी जड़ दुःख ही है—अवलम्बका बीज दुःख-हीसे प्राप्त होता है।

सुखके माथे सिल पड़ो (जो) नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुःखकी (जो) पल पल नाम रटाय॥

प्राणप्यारे! दुःख तो दो परन्तु उसके साथ ही अटल विश्वास भी स्वभावमें दो, जिससे मैं तुम्हें भूल ही न जानूँ। सारे भ्रम-शोक हृदयसे मिटा दो। सब शङ्काओंका समाधान कर दो।

बस, तुम्हारे इस भिक्षुकको तो यही भीख चाहिये। मन एकाग्र होकर तुम्हें देखे और खूब प्रेमसहित पहिचाने। तुमको ही अपना सर्वस्व माने और फिर कुछ भी न जाने। केवल तुम्हारे ही दर्शनकी प्रतिज्ञा ठाने और अपनी विचित्र दशा बना के और उसमें तुम्हींको पा ले—

जाको मन लाग्यो गुपालसों ताहि कछू न सुहावै।
लैके मीन दूधमें राखो जल बिनु सुख नहिं पावै॥
जैसे शूरिमा घायल घूमे पीर न काहू जतावै।
जैसे सरिता मिलति सिन्धुमें लौटि प्रवाह न आवै॥
ज्यों गूँगो गुड़ खाय लेतु है मुखसों स्वाद न गावै।
तैसेहि सूर कमल मुख निरखै चित इत उत न चलावै॥

बस, आठों याम मैं तुम्हारे ही नख-शिख शृंगारको निहारता रहूँ और अपने मनको तुम्हारे रोम-रोमकी रूप-माधुरीकी अमृत-मयी चाशनी चखाता रहूँ—जिससे वह अपनी सारी चञ्चलता भूल जाय। यदि भागकर संसारमें चला भी जाय तो तत्क्षण ही प्रेमकी प्रबल पिपासासे व्याकुल हो तुम्हारे चरण-कमलोंमें आकर टक्कर खाये। मेरे लड़ैते मन! देख कहीं भी मत जा—मैंने तेरे लिये कैसा अद्भुत दृश्य सम्मुख खड़ा कर दिया है।

मन है तो भली थिर ह्वै रहु तू प्रभुके पद-पंकजमें गिरु तू।
कवि सुन्दर जो न सुभाव तजै फिरिबोई करै तो यहाँ फिरु तू॥

लकुटीपर मोर पखापर है मुरलीपर है भ्रकुटी प्रभु तू ।
इन कुण्डल लोल कपोलनमें घनसे तनमें घिरिके रहु तू ॥

हे भक्तवत्सल यशोदानन्दन ! मैंने चारों ओर भाग दौड़ कर देखी, सब रंगरँग देखे, अनेक पाखण्ड और दम्भोंसे संसारको धोखा देकर रोटी खा देखी, अनेक मत-मतान्तर और शत्रु-मित्रोंके भाव छान देखे, बड़े-बड़े पोथा-पोतावालोंको 'जय नारायण' करके उनका सत्सङ्ग कर देखा, परन्तु क्या कहूँ 'चाटत रह्यो स्वान पातर ज्यों कबहूँ न पेट भर्यो' मनको विश्राम और शान्ति कहीं प्राप्त नहीं हुई । जहाँ गया वहाँ अन्तमें फूटा ढोल ही पाया ।

प्यारे तुम बिनु कहुँ सुख नाहीं ।
भटक्यो बहुत स्वाद रस लम्पट ठौर-ठौर जग माहीं ॥
प्रथम चाव करि बहुत प्राणप्रिय जाय जहाँ ललचाने ।
तहँसे फिर ऐसो जिय उचिटो आये बहुरि ठिकाने ॥
जित देखौं तित स्वारथहीकी निरस पुरानी बातें ।
अतिहि मलिन व्योहार देखिकै घिन आवति है तातें ॥
हीरा जो समझो सो निकसो काँचो काँच पियारे !
या व्यवहार 'नफा पाछे पछितानो' कहत पुकारे ॥
सुन्दर चतुर रसिक अरु नेही जानि प्रेम जित कीन्हो ।
तित स्वारथ अरु कारो चित ही भली भाँति लखि लीन्हो ॥

जानत भले तुम्हारे बिनु सब यादहि बीतत स्वासैं।
हरीचन्द नहिं छुटत तहूँ यह महा मोहकी फाँसैं॥

हे प्रणतपाल ! अब ऐसी कृपा करो कि तुम्हारे अतिरिक्त मुझे कभी अन्य कोई अवलम्ब ही न हो। किसी प्रकार भी तुम्हारी स्मृति चित्तसे न भूले। प्यारे भजनकी क्षुधा और दर्शनकी तृषा बढ़ा दो, मैं जबतक तुम्हारे गुण न गाऊँ तबतक अन्न-जल ही न खाऊँ। तुम्हारे प्रेमोद्गार ही सदैव चित्तमें उठें, जिनसे मैं पल-पलमें बावला होता जाऊँ और आठों पहर सर्वथा तुम्हारी ही यादमें मस्त रहूँ।

जाऊँ जहाँ तहँ त्यागि तुम्हें,
धन धाम न काम न वाम सुहावै।
नैन निहारि निहारि थकें,
दिन रैनि रटे रसना सुख पावै॥
मोहन तू मन मंदिरमें,
मुसुकायके माधुरि बेणु बजावै।
सोवत जागत देश विदेशहु,
ज्वाल नहीं तुमको बिसरावै॥

मोहन मुरारे ! वह कूक भर दो जो कि कोकिल बनकर प्रत्येक स्थानमें 'तू-ही-तू' कूकता फिरूँ, न कहीं कुछ देखूँ न किसीकी कुछ सुनूँ—जहाँ देखूँ वहाँ बस तुम्हें ही देखूँ—

सुनौं न काहूकी कहूँ कहौं न अपनी बात।
नारायण या रूपमें मगन रहौं दिनरात॥

नारायण भूलौं सबै खान पान विश्राम।
मनमें लागी चटपटी कब हेरौं घनश्याम॥

देह गेहकी सुधि नहीं टूटि जाय जग प्रीति।
नारायण गावत फिरौं प्रेम-भरे रसगीत॥

प्यारे! तुम भावावेशमें मुझसे रूठो और मैं तुम्हारे चरण-कमलोंको मस्तक नवाये हुए बारम्बार प्रार्थना करके तुम्हें मनाऊँ और सरकारपर बारम्बार वारी जाऊँ। मन और उसकी सहचरि इन्द्रियाँ तुम्हारे प्रेममें तल्लीन हों, गद्गद स्वर, दोनों हाथ बाँधे, मस्तक नवाये, रोमाञ्च खड़े किये, नेत्रोंसे अश्रुपात करता हुआ यह दृढ़ प्रतिज्ञा करूँ—

फूटि जाहुँ नैन जो पै और को निहारैं।
वाणी नसि जाय राधारमण ना पुकारैं॥
तन धन मिटि जाइ ज्वाल तुम्हें यदि बिसारैं।
भूलिके न जाइ हाथ और पै पसारैं॥

भला विश्वमें कोई क्या दे सकता है! सभी तो कौड़ी-कौड़ीके मुहताज हैं और तुम्हारे दरके भिखारी हैं। जब मैं स्वयं अपने द्वारपर आये हुए अभ्यागतको दो दाने देनेमें ही मुँह फेर

लेता हूँ तो फिर मुझ-ऐसे दानीको (यदि तुम्हारे द्वारका भिखारी बनूँ और कुछ माँगूँ) कहीं क्या मिल सकता है ! प्यारे ! इस कारण मैं तुमसे भी कुछ नहीं माँगता। यदि बिना याचनाके कुछ मिले भी तो उसे कहाँ रक्खूँ ! बस, माँग है तो इस आर्त भिक्षुक-की यही है कि इसे प्रेमकी भिक्षा मिले।

आशिके जहाँमें दौलतो इकबाल क्या करे।
मुल्को मकान लेगो तबर ढाल क्या करे॥
जिसका लगा हो दिल वह ज़रो माल क्या करे।
दीवाना चाहे हशमतो अजलाल क्या करे॥
बेहाल हो रहा हो तो वह जाल क्या करे।
गाहक ही जो न लेवे तो दल्लाल क्या करे॥

प्यारे लला ! बस, मुझे तो तुम ही माँगे मिल जाओ और कोई याचना और कामना मुझे नहीं, अपने तो हीरालाल तुम्हीं हो, अपनी अनेक जन्मोंकी चाँदी इसीमें है, तुम तो लाड़ करनेके योग्य हो, काम कराने योग्य कहाँ हो !

जो माँगे पाऊँ विधि पाहीं। राखौं तुम्हें नैनके माहीं॥

दानिशिरोमणि ! तुम ही से पाकर चराचर जीव सुखी

---

१ प्रेमी २ धन ३ ऐश्वर्य ४ तलवार ५ कुल्हाड़ी ६ सोना ७ पागल ८ दौलत ९ पद १० फन्दा।

होते हैं। तुम्हारी ही देनसे अनेकों धनवान् कहा रहे हैं। प्यारे! सत्य है—

भिक्षुकसे भिक्षा क्या माँगौं,
है किस हेतु दानका दान।
कमी नहीं है प्रभु दानीके,
उससे माँगि होऊँ धनवान॥

दीनदयालु महादानी! आर्तकी आरतिहरण तुम ही तो हो। धन, त्रिया, बल, ऐश्वर्य—यह तुम्हारे कमलनेत्रोंके इशारे हैं। जब स्वयं ही कृपा करके मिलोगे तो यह बेचारे कहाँ छोड़कर जा सकते हैं!

दीनको दयालु दानि दूसरो न कोऊ।
जासों दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ॥
सुर नर मुनि असुर नाग साहब तो घनेरे।
तौलौं जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे॥
त्रिभुवन तिहुँकाल विदित वदत वेद चारी।
आदि अंत मध्य नाथ साहबी तिहारी॥
तोहिं माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।
सुनि सुभाव शील सुजश जाँचन जन आयो॥
पाहन पशु बिटप बिहँग अपने करि लीन्हे।
महाराज दशरथके रंक राय कीन्हे॥

तूँ गरीबको निवाज हौं गरीब तेरो।
बारेक कहिये कृपालु तुलसिदास मेरो॥

सरकार! धनसे तो आजतक किसीकी तृप्ति होते नहीं देखी है—तृष्णा तो कभी सन्तुष्ट होने ही नहीं देती। धन अलचका भण्डार बना ही देता है और तुम फिर उसके परदेमें छिप ही जाते हो, और लोभकी भूख बढ़ जाती है।

बड़े हैं कोह[1] सहरा[2] भी मगर दामन[3] पसारे हैं।
उन्हें भी प्यास लगती है जो दरियाके किनारे हैं॥

प्राणनाथ! यदि तुम्हारी देनेकी ही रुचि है, तो मुझे मेरे इस पचास सालके जीवनमें सौ करोड़का धनी बना दो। वह ऐसे कि पचास हजार नाम नित्य लेनेकी तृष्णा अचल कर दो। इसप्रकार एक मासमें पन्द्रह लाखका खजाना मेरे पास हो जायगा। एक सालमें एक करोड़ अस्सी लाखकी पूँजी हो जायगी। उपर्युक्त जीवनमें मैं सौ करोड़का कुबेर-भण्डारी-बन जाऊँगा। नाथ! मुझे अपने इस सोलह नामके निम्नलिखित महामन्त्रकी तीस मालाएँ प्रतिदिन जपनेकी सामर्थ्य दो। इससे बढ़कर तुम्हारा कोई निष्काम मन्त्र नहीं। तुम उसीको प्रत्यक्ष देखनेको मिलोगे, जहाँ इस क्रियाके द्वारा तुम्हारा नाम-धन कमाया जाता होगा और यह शब्द सुनायी देते होंगे—

१ पर्वत २ जंगल ३ अंचल

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

प्राणवल्लभ श्रीराधारमण ! तुमने अपनी जादूभरी निगाहोंके तार और मन्द-मन्द मुस्कानकी पाशसे मेरे मनको धीरे-धीरे बाँधा था । मुझे धोखेमें बाँधनेपर तुम कोई ऐसा फन्दा भूल गये कि उल्टे स्वयं ही बँधकर डोरका सिरा मेरे हाथमें दे बैठे । अब ऐसी दशामें मैं अपने बन्धन छुड़ानेकी तो तुमसे प्रार्थना कर नहीं सकता । परन्तु न मालूम तुम बँधनेपर भी कभी-कभी क्यों दाव देकर भाग जाते हो । भागकर छूट भी पाते नहीं—फिर खिंच आते हो परन्तु टेव नहीं छोड़ते । बहुत बार ऐसा कर चुके हो, अब तो इस अपने कैदीके कैदी-कोतवाल ! मुझे छोड़कर कहीं मत भागो । तुम मुझे पकड़े रहो और मैं तुम्हें दोनों हाथोंसे पकड़े तुमपर ही पहरा देता रहूँ । मेरे नेत्रभवनमें ही बन्द रहो या मनकी काल-कोठरीमें पड़े बाँसुरीमें सुर भरते रहो ।

मोहन राखौं नैनमें पलक बन्द करि लेहुँ ।
ना मैं देखहुँ और को ना तोहि देखन देहुँ ॥

प्यारे ! तुम मुझमें रम जाओ और मैं तुममें समा जाऊँ । हम-तुमका नाम ही मिट जाय । द्वैत-संकल्प ही न रहे, तुमसे रात-दिनकी छेड़-छाड़ ही छूट जाय । बस, फिर क्या है, आनन्द ही आनन्द हो जाय—

मोहि मोहि मोहनमयी हि मन मेरो भयो
हरीचन्द भेद ना परत कछु जान है।
कान्ह भये प्रानमय प्रान भये कान्हमय
जियमें न जानि परै कान्ह है कि प्रान है॥

अहा हा ! इस अभागेको श्रीजगज्जननी राजदुलारी श्री-वृषभानुकिशोरीका वही मनोरंजक दृश्य स्मरण होता है जो कि वे साक्षात् करके दरसा चुकी हैं।

श्याम श्याम रटत राधे आपुहि श्याम भई।
पूँछति फिरि अपनी सखियनुसों प्यारी कहाँ गई॥
वृन्दावन-वीथिन जमुना-तट श्रीराधे-राधे-राधे।
चतुर सखी यह दशा देखिके रहीं सकल मौन साधे॥
गरुई प्रीति कहा न करावै क्यों न होय गति ऐसी।
कह भगवान हित रामराय प्रभु लगन लगै तो ऐसी॥

प्राणाधार ! यह प्रार्थना स्वीकृत कर लो। नहीं तो तुम जहाँ जाओगे वहाँ कुछ-न-कुछ बन्धनमें अवश्य आओगे। कोई भी तुम्हें बेकार नहीं बैठने देगा, कोई रथ हँकायेगा, कोई बर्तन मँजायेगा, कहीं गौ चरानी पड़ेगी, कहीं द्वारपाल बनोगे, कोई जूँठन उठवायेगा, कोई कुम्भक-रेचक-पूरककी चरखीमें चढ़ाये-उतारेगा, कहीं किसीके यहाँ वर्षों बन्द रहना पड़ेगा, इससे तो

यही अच्छा है कि तुम मुझमें समा जाओ, मैं तुमसे निभाऊँ और बार-बार वारी जाऊँ और क्षीर-नीर बन जाऊँ—

'दास' परस्पर प्रेम लखौ गुण क्षीरको नीर मिले सरसातु है।
नीर बिकावत आपने मोल जहाँ जहँ जायके क्षीर बिकातु है॥
पावक जारन क्षीर लगै तब नीर जरावत आपनो गातु है।
नीरकी पीर निवारन कारन क्षीर घरी ही घरी उफनातु है॥

नाथ! इस प्रकार भी यदि साथ रहोगे तो यह अल्प विनश्वर जीवन कृतार्थ होकर आनन्दमय बन जायगा। प्यारे! इतना साथ निभाओ कि मैं हरदम पास रहनेपर भी तुम्हारे लिये इस प्रकार व्याकुल ही बना रहूँ—

बाहर जाऊँ तो बाहर ही घर आऊँ तो मेरे संग लगेहीं।
मौनके कोनमें जाइ छिपों हरि पैठि रहैं हियमें पहिलेहीं॥
नींद करौं नकमानी जबै छिन ही छिन आवत हैं सपनेहीं।
सोवत जागत रैनि दिना मनमोहन मोहि तो चैन न देहीं॥

या यों—

स्याम मोरे ढिगते कबहुँ न जावे।
कहा कहूँ सखि गैल न छाँडै, जित जाऊँ तित धावे॥
गाइ दुहत मोरे गोदमें बैठे, धार-दूध पी जावे।
दही मथत नवनी लेवे हित, मटकी माँहि समावे॥

रोटी करत आइ चौकेमें, ऊधम अमित मचावे ।
जेंवत आइ सङ्ग बैठे पुनि, माल माल गटकावे ॥
सखियन सँग बतरात आइ सो, पञ्चराज बनि जावे ।
मुरली मधुर बजाय देखु सखि, मोहन हमहिं रिझावे ॥
सोवत समय सेज आ पौढ़े, गृह-स्वामी बनि जावे ।
स्वल्प निंदरिया बीच स्वप्नमहँ, माधुरि रूप दिखावे ।
तदपि न बरजत बने ताहि सखि, चित अति ही सुख पावे ॥
बारहिं बार निहारि चन्द्रमुख, अन्तर अति हुलसावे ॥

हे हृदयेश ! नेत्र तुम्हें एकटक निहारते ही रहें । तुम्हारा क्षणिक वियोग भी इन्हें असह्य हो जाय । मीनके सदृश यह नेत्र बिना पलकके तुम्हारी ही छविपर खुले रहें, एकटक निहारनेपर भी इन्हें शान्ति न हो ।

तव मुखचन्द्र चकोर मेरे नैना ।
अति आरत अनुरागी लंपट,
भूलि गई गति पलहु लगै ना ॥
अरबरात मिलिबेको निशि-दिन,
मिले रहत मानो कबहुँ मिलै ना ।
भगवतरसिक रसिककी बातें,
बिना रसिक कोउ समुझि सकै ना ॥

हे शोभासागर ! वह दृष्टि प्रदान करो कि जहाँपर देखूँ सरकार ही खड़े मुस्कराते हों और मैं गद्गद स्वर अश्रुपात करता तुम्हारे चरण-कमलोंमें मन लगाये दर्शन करूँ—बस, इसी सज-धजमें देखूँ और फिर देखूँ, सदा देखता ही रहूँ—

और कछू न सुहाय लखे छवि,
चित्त कभी न अघाय निहारे।
नैन लखैं जहँ पै तहँ देखहिं,
वेणु बजे गिरिराजहि धारे॥
जीवनमूरि घनानंद माधव,
मोहन चित्त चुरावनहारे।
ग्वाल बसौ मन-मन्दिरमें,
मुरली घनश्याम बजावनहारे॥
वा मुस्कानि चितौनि सुबोलनि,
वा हँसि हेरनि प्राणअधारे।
भूलहिं नाहिं कभौं चितसों,
जहँ ध्यान धरों तहँ कृष्ण मुरारे!॥
देहु यही बर या छवि सुन्दर,
नैनंतुसे बिसरै न बिसारे।
ग्वाल बसो मन-मन्दिरमें,
मुरली घनश्याम बजावनहारे॥

हे ब्रजभूषण ! मैं तो तुम्हें पाकर कृतार्थ हो गया । सब प्रकार सन्तुष्ट हो गया, मनसे सारी वासनाओंके सिरसका विनाश हो गया । लघु मुखसे तुम्हारा गुणानुवाद कहाँतक गा सकूँ ! जब शेष, गणेश, महेश, दिनेश ही शारदासहित इस विषयमें मूक हैं तो इस पापाचारीकी क्या सामर्थ्य है ? धन्य है ! धन्य है ! प्राणनाथ ! बड़ी ही कृपा की जो कि तुमने इस कूकरेको उबार लिया—

पाप हरे परिताप हरे तन पूजि भो हीतल शीतलताई ।
हंस करो बकसों बलि जाहुँ कहाँ लौं कहौं करुणा अधिकाई ॥
काल बिलोकि कहै तुलसी उरमें प्रभुकी परतीति अघाई ।
जन्म जहाँ-तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई ॥

नैनोंके तारे मनमन्दिरके उजियारे ! इसमें कुछ तुमको भी टोटा नहीं है और मेरा भी जन्म-जन्मका काम है । बस, श्रीमुखसे एक बार कह दो न कि, तुम्हारी निम्नलिखित प्रार्थना हमें स्वीकार है—

बोलो करै नूपुर श्रवणनुके बीच सदा,
मन मेरो पगतल माँहि विहरो करै ।
बाजो करै बंशी ध्वनि पूरि रोम-रोम प्रति,
मन्द मुसुकानि मन मेरो हरो करै ॥
हरीचन्द चलनि मुरनि बतरानि छवि,
छाई रहै मेरे दृग-द्वगनु भरो करै ।

प्राणहुसे प्यारो रहै, प्यारे तू सदा ही प्यारो,
पीतपट हीय बीच मेरे फहरो करै ॥

जीवनधन ! मैं किस-किस भाँति क्या-क्या कहूँ ? तुम्हें जो कुछ अच्छा प्रतीत हो, वही दो। क्योंकि तुम अन्तर्यामी हो। भला यह तुच्छ जीव अपना दीपक-प्रकाश सूर्यके सम्मुख क्या दिखला सकता है ? अब तो यह सब प्रकार चरण-शरण है। इसकी लाज सब प्रकार तुम्हींको है—

अब तो यदुनाथ लाज हाथमें तिहारे।
दोपदलन दीनबन्धु देवकी-दुलारे ॥
दुःख-हरण विश्वभरण राधारमण प्यारे।
तुम्हें त्यागि जाऊँ कहाँ मोर-मुकटवारे ॥
तात सखा मातु-पिता नाथ तुम हमारे।
लागति अति लाज जात और द्वार प्यारे ॥
माँगै वर ज्वाल यही जीवनधनतारे।
हेरों मन-मंदिरमें मुरली अधर धारे ॥

हे मङ्गलमूर्ति ! तुम स्वामी हो और मैं सेवक हूँ, मैं ध्याता हूँ तुम ध्येय हो। यह तन-मन-धन सब तुमपर न्योछावर है। मेरे सर्वस्व ! मैं तो अब तुम्हारे ही आश्रय हूँ, तुम ही मेरे एकमात्र अवलम्बन हो—

जैसे राखौं वैसे रहौं।

जानत दुख सुख सब जनके तुम मुखसे कहा कहौं॥
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि कबहूँ भूख सहौं।
कबहूँ चढ़ौं तुरंग महागज कबहूँ भार बहौं॥
कमलनैन घनश्याम मनोहर अनुचर भयो रहौं।
सूरदास प्रभु भक्त कृपानिधि तुम्हरे चरण गहौं॥

मदनमोहन! आजतक तो तुम्हारी कीर्ति अलापते यह मेरी आयु अच्छी बीत गयी। प्यारे! अब शेष जो रही, उसमें भी मैं निरन्तर तुम्हारा ही ध्यान करता हुआ, भवार्णवके पार पहुँचूँ। बस, इस आर्तकी यही याचना है और सरकारसे यही मनकी चाहना है—

अब प्रभु कृपा करो यहि भाँती।
सब तजि भजन करौं दिनराती॥
जन्म जन्म रति तव पद कंदा।
बढ़ै प्रेम चकोर जिमि चंदा॥
यह अभिमान जाइ जनि मोरे।
मैं सेवक यदुपति पति मोरे॥
नित प्रति करौं कमलपद पूजा।
मेरे धर्म-कर्म नहिं दूजा॥

हे भक्तभयहारी ! मैं अब कभी विक्षेपके भँवरमें न पड़ूँ और न मायाकी किसी खटपटमें फँसूँ, दैवात् यदि किसी प्रपंचके फंदेमें फँस जाऊँ तो भी तुम्हारे नामपर फेंट कसी रहे। केवल शरीर ही उस बन्धनमें रहे परन्तु मन—मनोहर मदनमोहन ! तुम्हें रटता ही रहे। तुम्हारी साँवरी सलोनी माधुरी मनमोहिनी मूरतको कभी न भुलाऊँ और प्रातः-सायं 'जय हो प्यारे राधारमणकी' बस, यही गाऊँ—

दास लखै मुखचन्द्र प्रकाश चकोर समान न नैन हटावै।
तात सखा धन धाम सबै तुमको तजि और कछू न सुहावै॥
राग रहै अनुराग भरो नित प्रीति प्रतीति प्रमोद बढ़ावै।
ग्वाल हिये यह साँवरी सूरति माधुरि मूरति वेणु बजावै॥
सोवत जागत ध्यान रहै मन श्याम स्वरूप नहीं बिसरावै।
शांति स्वरूप रहै मन चंचल त्यागि तुम्हैं फिर अनत न जावै॥
सूमकी संपति लेहि बनाय बसायके भीतर ही सुख पावै।
ग्वाल हिये यह साँवरी सूरति माधुरि मूरति वेणु बजावै॥

हे रसिकविहारी ! आनन्दमूर्ति बनवारी ! हे अजिरविहारी ! यह मेरी टूटी झाँझरी नैया केवट-पतवारविहीन केवल तुम्हारे ही आश्रय भँवरमें पड़ी है। नाथ ! इसे तो कृपाकी बल्ली लगाकर

अब पार ही करो—क्योंकि अब तुम्हारे अतिरिक्त और किसीपर दृष्टि नहीं जाती । इसलिये मेरा तो निवेदन तुमसे ही है—

प्रिय प्राण-रमण मनमोहन सुन्दर प्यारे ।
छिनहू मति मेरे होहु दृगनुसे न्यारे ॥
तुमही मम जीवनके अवलम्ब कन्हाई ।
तुम बिनु सब सुखके साज परम दुखदाई ॥
तुव देखे ही सुख होत न और उपाई ।
तुम्हरे बिनु सब जग सूनो परत लखाई ॥
हे जीवनधन ! मेरे नैननुके तारे ।
छिनहू मति मेरे होहु दृगनुसे न्यारे ॥
तुम्हरे बिनु इक छिन कोटि कल्प सम भारी ।
तुम्हरे बिनु स्वर्गहु महा नरक दुखकारी ॥
तुम्हरे संग बनहू घरसे बढ़ि बनवारी ।
हमरे तो सब कछु हौ तुम ही गिरधारी ॥
हरिचन्द हमारो राखो मान दुलारे ।
छिनहू मति मेरे होहु दृगनुसे न्यारे ॥

सत्यसनेही ! एक और भली याद आयी । वह यह कि यह सब माँगें जिस दिनके लिये हैं वह मृत्यु-दिवस जब आ जाय तो उस दिन तुम किसीके निमंत्रण खाने न चले जाना। अथवा शेष-

शैय्यापर निद्राके वशीभूत न हो जाना। बस, केवल दो मिनटको प्राणान्त-समयपर तुम अवश्य कष्ट उठाना। क्योंकि वात, पित्त, कफ उस समय पुकारने देंगे नहीं जो कि मेरी सुनकर तुम चलते। इसलिये प्यारे ज्योतिपाचार्य! मैं हाथ जोड़कर तुमसे निवेदन करता हूँ—कि मरण-तिथिसे थोड़े दिन पहिलेहीसे कृपा करना। जैसे आजकल महीनों गोता लगाये रहते हो, प्यारे! कृपा करके उस समय ऐसा खेल न खेलना—

हो वक्ते[1] मर्ग[2] घरवालोंने घेरा।
खड़ा हो सब लदा असबाव[3] मेरा॥
पड़े जाँ[4] और अजलमें[5] आके तकरार।
लड़ें दोनों बराबर बार बार॥
वह बिछुड़ी हो कि झटपट तनसे निकलूँ।
यह मचली हो कि दर्शन करके निकलूँ॥
नजर आ जाये छवि बाँकी अदाकी।
खुलें आँखें तो झाँकी हो अदाकी॥
जो आये आँखमें दम प्राणप्यारे।
लगा हो ध्यान चरणोंमें तुम्हारे॥

कण्ठावरोधनसमयपर, हिचकियाँ आते हुए प्राण निकलते

---

१ समय २ मृत्यु ३ सामान ४ प्राण ५ मृत्यु

समय मैं [illegible] । मुझे जन्म-जन्ममें इसी भाँतिकी [illegible] इस अवस्थामें मुझे अत्यन्त प्यारा है, [illegible]-समयपर अपनी आनन्द-निधिको लूटता जाऊँ । ऐसा संयोग केवल तुम्हारी महान् कृपासे ही होता है—

कदमकी छाँह हो जमुनाका तट हो ।
अधर मुरली हो माथेपर मुकुट हो ॥
खड़े हों आप इक बाँकी अदासे ।
मुकुट झोकोंमें हो मौजे हवासे ॥
जो आये आँखमें दम प्राणप्यारे ।
लगा हो ध्यान चरणोंमें तुम्हारे ॥
गिरे गरदन ढुलककर पीत पटपर ।
खुली रह जायँ यह आँखें मुकुटपर ॥
अगर इस तौर हो अंजाम मेरा ।
तुम्हारा नाम हो औ, काम मेरा ॥

प्यारे ! प्रार्थना तो यही है, वैसे तुम्हारी इच्छा है । यदि मृत्युशय्यापर दस-पाँच मिनटका अवकाश और मिल जाय तो तुमसे थोड़ा-सा यह आर्तनाद और कर लूँगा—

करुनाकर ! करुना करि बेगहि सुधि लीजे ।
सहि न सकत जगत दाव तुरत दया कीजे ॥

हमरे अवगुनहिं नाथ सपने जनि देखहु।
आपनी दिसि प्राननाथ प्यारे अवरेखहु॥
मैं तो सब भाँति हीन क्रूर कुटिल कामी।
करत रहत धन-जनके चरनकी गुलामी॥
महापाप पुष्ट दुष्ट धर्महिं नहिं जानौं।
साधन नहिं करत एक तुमहिं शरण मानौं॥
जैसो हौं तैसो अब तुमहिं शरण प्यारे।
काहू विधि राखि लेहु हमतो अब हारे॥
द्रुपदसुता अजामेल गजकी सुधि कीजे।
दीन जानि हरीचन्द बाँह पकरि लीजे॥

श्रीराधारमण बाधाहरण! बस, और अधिक मैं क्या कहूँ? तुम्हें देखकर तो कुछ कहते ही नहीं बनता है। जहाँ तुम स्वयं विराजमान हो, वहाँ क्या नहीं है? बस, इस प्रेम-भिक्षुककी एक प्रार्थना और है—

अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निर्वान।
जनम जनम रति नाथ-पद यह वरदान न आन॥
नाथ एक वर माँगहूँ वेगि कृपा करि देहु।
जनम जनम तव कमलपद घटै न कबहूँ नेहु॥

बार बार वर माँगहूँ हर्षि देहु श्रीरंग।
पदसरोज अनपायनी भक्ति सदा सत्संग॥
मोहि न चाहिय नाथ कछु तुमसन सहज सनेहु।
दीनबन्धु करुणायतन यह मोहि माँगे देहु॥
शीश मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यह बानिक मम उर बसौ सदा बिहारीलाल॥

प्राणनिवास! सब कुछ देते हुए इतना दान और भी दे दो कि इस चरणकिंकरको व्रजभूमि जन्मदात्री मिले; जो सृष्टि-भरमें आनन्ददायिनी और भूलोकका दिव्य धाम है। मनुष्य-जीवन [यदि अन्य स्थानमें जन्म हो] मैं नहीं चाहता—मुझे तो पशु-पक्षी इत्यादि जो कुछ भी कर्माधीन योनि मिले, वह वृन्दाबन धाम ही में मिले। मैं व्रजका कीट-भृंग होनेमें ही प्रसन्न हूँ—

गिरि कीजे गोधन मयूर नव कुंजनु को,
पशु कीजे महाराज नन्दके नगर को।
नर कीजे तौन जौन राधे राधे नाम रटै,
तरु कीजे बरु कछु कालिन्दी कगर को॥
इतने ही पै कीजे जो कछु कुँवर कान्ह,
राखिये न फेरि या 'हठी' के झगर को।

गोपी-पद-पंकज-पराग कीजे महाराज,
तृण कीजे रावरे ही गोकुल नगर को ॥

इन बातोंका न्याय तुम ही कर सकते हो, क्योंकि बुद्धिका काम भावी-निर्णय नहीं है। न्यायकारी! तुम जिस योग्य समझो व्रजमें ही बसा दो—

मानुष हौं तौ वही रसखानि
बसौं व्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बसु मेरो
चरौं नित नन्दकी धेनु मझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि कौ
जो धर्‌यौ कर छत्र पुरंदर-धारन।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि
कालिंदी कूल कदम्बकी डारन॥

अहा हा! धन्य वृन्दावन-धाम! तुझे बारम्बार कोटिशः प्रणाम है—महान् बड़भागी पुरुषोंको तुझमें घड़ीभर विश्राम प्राप्त होता है। नाथ! तुम जब अत्यन्त प्रसन्न होते हो, तब अपना धाम बसनेको देते हो। बस, इससे परे अन्य कोई धाम नहीं है।

वृन्दावनकी रेणुको सुरपति नावत माथ।
जहाँ जाय गोपी भये श्रीगोपेश्वर नाथ॥

वृन्दावनमें वास करि साग पात नित खात।
तिनके भागनिको निरखि ब्रह्मादिक ललचात॥

हम न भये ब्रजमें प्रगट यही रही मन आस।
निसिदिन निरखत युगलछवि करि वृन्दावन वास॥

मुक्ति कहे गोपाल तें मेरी मुक्ति कराइ।
ब्रज-रज उड़ि मस्तक लगे मुक्ति मुक्त है जाइ॥

कदम कुंज ह्वैहौं कबै श्रीवृन्दावन माँहि।
ललितकिशोरी लाड़िले विहरैंगे तेहि छाँहि॥

कब कालिन्दी कूलकी ह्वैहौं तरुवर-डार।
ललितकिशोरी लाड़िले झूलें झूला डार॥

कब हौं सेवा-कुंजमें ह्वैहौं श्याम तमाल।
लतिका कर गहि विरमिहैं ललित लड़ैती लाल॥

कब कालिंदी कूलकी ह्वैहौं त्रिविध समीर।
युगल अंग अँग लागि हौं उड़िहैं नूतन चीर॥

सुमन-वाटिका विपिन महँ ह्वैहौं कब मैं फूल।
कोमल कर दोउ भावते धरिहैं बीनि दुकूल॥

कृपासिन्धो! अब देर करनेका काम नहीं है। इस दासको तो ब्रज ही प्यारा है, स्वर्ग नहीं। रसिकमनमोहन! हम अब और कुछ नहीं चाहते। बस, यही आशा है—

यमुना-पुलिन-कुंज गह्वरकी कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊँ।
प्रिय-पद-पंकज लाल मधुप ह्वै मधुरे-मधुरे गुंज सुनाऊँ॥
कूकर ह्वै बन वीथिन डोलूँ बचे सीथ रसिकनके खाऊँ।
ललितकिशोरी आस यही ममव्रजरज तजि छिन अनत न जाऊँ॥

प्राणनाथ! तुम्हारी नेक दयादृष्टिसे ही यह अभीष्ट मनोरथ सिद्ध हो सकता है। तुम कृपालु हो। दयाभाव तुम्हारा स्वभाव है—

दीनबन्धु दीनानाथ रमानाथ ब्रजनाथ
राधानाथ मो अनाथकी सहाय कीजिये।
तात मात भ्रात कुलदेव गुरुदेव स्वामी
नातो तुम ही सों मो विनय सुनि लीजिये॥
रीझिये निहारि देर कीजिये न झीनी कहूँ
दीन दास जानि मोहि आपनाय लीजिये।
कीजिये कृपा कृपाल साँवरे बिहारीलाल
मेटि दुख जाल बास वृन्दावन दीजिये॥

हे रसिकबिहारी, मोहन मुरारी, श्रीनन्द-अजिरबिहारी सुखकारी, दुःखहारी! मैं तो मनमें आयी सब कुछ कह चुका, अब आगे तुम्हारे आधीन है—

आप सब नियरे अरु दूरिकी पहिचानत हौ

छिपी नाहिं काहु कूर साहिब सहूर की।

चुकता नित्राजी करि राजी छिन ही में होत

करत ऐतराजी नें सुनिके कसूर की॥

तुम सो न दूसरो दयालु श्रीबिहारीलाल

जाहि लाज आवै निज जनके जरूर की।

गरजी विचारेको अरजी दियें ही बने

मानौं या न मानौं यह मरजी हुजूर की॥

मेरे जीवनधन! तुम्हें अब साष्टांग प्रणाम है। प्यारे! हमें तुम भूल मत जाना—जैसा कुछ भी हूँ, मैं तुम्हारा ही हूँ—

बाँह छुड़ाये जात हौ निबल जानिके मोहि।

हिरदै तें जब जाहुगे मर्द बदौंगो तोहि॥

प्यारे! जा तो रहे ही हो, अब मेरी अन्तिम अभिलाषा और है—

मूरति यह माधुरी मेरे मनमें बसी रहे।

मम कंठ सदा कृष्णनाम पै फसी रहे॥

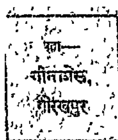
लौ लाड़िले तुमसे सदा मेरी लगी रहे।

प्रभु-प्रीतिकी प्रतीति पदाम्बुज पगी रहे॥

राधा-रमण बाधा-हरण मंगल-करण कहूँ ।
चाहे जहाँ कृपानिधे! जिस वेषमें रहूँ ॥
जाना न कभी याद भूल जनकी मुरारे! ।
मनमें रमे मोहन! रहो मुरली अधर धारे ॥
सब भाँतिसे प्रभु-चरण-शरण हम हैं तुम्हारे ।
माता पिता सखा स्वजन तुम ही हो हमारे ॥
ज्वाला तुम्हीं पै तन तथा मन और धन वारे ।
यह मन्द-मन्द माधुरी मुसुकानि निहारे ॥

श्रीकृष्णचरणार्पणमस्तु




पता—
गीताप्रेस,
गोरखपुर